प्रसंगशः

आलोक मेहता

रिक्शों के बिना प्रगति का सपना

रिक्शा-तांगे वालों के लिए प्रगतिशील कम्युनिस्ट भी झंडा उठाए नहीं दिखते

समूचा भारत तेजी से प्रगति कर रहा है। दुनिया के सर्वाधिक संपन्न और भीड़भाड़ वाले शहर न्यूयॉर्क के व्यस्ततम मैनहटन इलाके में रिक्शे चलते रहेंगे लेकिन भारत की ऐतिहासिक-सांस्कृतिक राजधानी इंद्रप्रस्थ में रिक्शों पर प्रतिबंध लग गया है। अब जर्मनी और ब्रिटेन से आने वाले हमारे अतिथियों को चांदनी चौक में रिक्शे से घूमने का सुखद अनुभव नहीं हो सकेगा। चांदनी चौक के कुछ प्रभावशाली नेता और व्यापारी प्रसन्न हैं। स्वयं कोई बुराई मोल लिए बिना एक अदालती आदेश के आधार पर उनके क्षेत्र में एक महीने के अंदर साइकिल रिक्शों पर प्रतिबंध लग जाएगा। एक मोटे अनुमान के अनुसार दिल्ली के इस सबसे पुराने इलाके में लगभग 5 हजार रिक्शे चलते हैं। व्यापार मंडल के नेता कह रहे हैं कि रिक्शों पर प्रतिबंध से बाजार की रौनक बढ़ जाएगी। लेकिन क्या इस क्षेत्र में सरकार द्वारा चलाई जाने वाली मिनी बसों से लोग अधिक आनंदित हो जाएंगे? कारों, स्कूटरों के थोड़ा तेज चल पाने से क्या यह इलाका अधिक संपन्न और खुशहाल दिख सकेगा? चांदनी चौक पर लागू इस फैसले को आधार बनाकर दिल्ली या देश के अन्य नगरों के कुछ भीड़ भरे इलाकों में भी क्या रिक्शों पर प्रतिबंध की मांग करने वाली याचिकाएं दायर नहीं की जा सकतीं? अदालत या दिल्ली सरकार ने यह भी नहीं बताया है कि चांदनी चौक में प्रतिबंध के बाद पांच-सात हजार रिक्शा चालकों के वैकल्पिक रोजगार की क्या व्यवस्था होगी। दिन भर खून-पसीना बहाने के बाद 50 से 100 रुपया कमा लेने वाले रिक्शा चालक किस दरवाजे पर जाकर रोजी-रोटी की गुहार लगाएंगे?

निश्चित रूप से विद्वान न्यायाधीशों, चांदनी चौक के समृद्ध व्यवसायियों और राजनीति में सफल सत्ताधारियों के पास हम जैसे पत्रकारों से अधिक समझदारी होगी और वे आधुनिक दुनिया में चांदनी चौक को अत्याधुनिक साबित करना चाहते होंगे। लेकिन रिक्शे पिछड़ेपन और सड़क के सिरदर्द के प्रमाण कैसे हो सकते हैं? दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, लंदन या न्यूयॉर्क की प्रमुख सड़कों पर कारों, टैक्सियों की लंबी कतारें, एक-दूसरे को पीछे छोड़ देने की हड़बड़ी को क्या आदर्श जनजीवन कहा जा सकता है? मजेदार तर्क यह दिया गया है कि दिल्ली में रिक्शा माफिया हावी है। एक-एक के पास 200-200 रिक्शे हैं। लेकिन प्रतिबंध से ऐसे माफिया अधिक प्रभावित होंगे या रिक्शा चलाने वाला गरीब मजदूर? माफिया कहीं और सक्रिय हो जाएगा, किसी और धंधे में लग जाएगा। लेकिन बिहार, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, उड़ीसा, बंगाल, छत्तीसगढ़, तमिलनाडु जैसे राज्यों से रोजी-रोटी की तलाश में दिल्ली आने वाले मजदूरों के पास कितने विकल्प हैं? पिछले दिनों मैं जिस रिक्शे पर जा रहा था, उसको चलाने वाला मात्र 14 वर्ष का बच्चा था और रिक्शा चलाने के साथ पांचवीं कक्षा में पढ़ भी रहा है। बिहार में पिता की मृत्यु के बाद दिल्ली आकर उसने अपना रिक्शा खरीदा और इस धंधे में लग गया। वह जेब-कतरा, चोर या साधु नहीं बनना चाहता। मेहनत करना चाहता है। रेलवे स्टेशन पर लाइसेंस प्राप्त कुली बनना बहुत कठिन है और मजदूरी मिलना आसान नहीं है। फिर वही अकेला नहीं है, पूरी दिल्ली में लगभग एक लाख रिक्शे चल रहे हैं। कुछ इलाकों में तो दिन-रात की शिफ्ट होने पर एक रिक्शे से दो परिवारों के पेट पल रहे हैं। राष्ट्रीयकृत या प्राइवेट बैंक दिल्ली में टैक्सियों की कतारें बढ़ाने के लिए हाथ जोड़कर कर्ज देने को तैयार हैं। रिक्शों या रिक्शा चालकों के लिए कौन कर्ज देगा? हर चौराहे पर पुलिस वाले डंडा बजाकर रिक्शा चालकों से दस-पांच रुपये झटक लेते हैं और कहीं कोई शिकायत दर्ज नहीं होती। जागरूक पुलिस ने पिछले एक साल में 44 हजार से ज्यादा रिक्शे जब्त किए और कहीं जुर्माने, कहीं नेताओं की सिफारिश के बाद वे फिर सड़क पर दौड़ने लगे। यदि रिक्शा माफिया पर अदालत नाराज है तो प्रतिदिन सड़क पर साधारण लोगों को रौंदती-कुचलती बसों के असली मालिकों (विभिन्न पार्टियों के नेताओं) के माफिया को हत्या के अपराध में अप्रत्यक्ष भागीदारी के लिए कठोर दंड क्यों नहीं देती? प्रदूषण रोकने के लिए ही सही, सीएनजी बसें चलवाने को बाध्य करने वाली व्यवस्था के साथ बसों की गति नियंत्रित रखने के अदालती आदेश की निरंतर अवहेलना पर किसी बड़े पुलिस आयुक्त या उसके राजनीतिक आका को बर्खास्त क्यों नहीं किया जाता?

न्यूयॉर्क के मैनहटन में रिक्शा

एक तरफ भारत में पर्यटन को प्रोत्साहन देने के नाम पर महलों को होटलों में बदला जा रहा है, कृत्रिम ग्रामीण परिवेश के बहाने कांसे-पीतल या मिट्टी के बर्तन में भोजन परोसकर मोटे बिल वसूले जा रहे हैं। दूसरी तरफ तांगों, रिक्शों और बैलगाड़ियों पर प्रतिबंध लग रहे हैं। दिन भर रिक्शा चलाने वाले या सड़क किनारे बूट पॉलिश करने वाले को भगाना, पीटना पुलिस का मूलभूत अधिकार है लेकिन ट्रैफिक नियम तोड़ने से लेकर हवाई जहाज से गैर कानूनी ढंग से तस्करी का माल लाने वाले कई अपराधियों और उनके सरपरस्त नेताओं को वही पुलिसकर्मी सलाम करते हैं। फल-सब्जी-फूल या अनाज के बड़े व्यापारी से नोट मिलते ही प्रशासन या पुलिस के अधिकारी प्रसन्न हो जाते हैं लेकिन ठेले या सड़क किनारे सब्जी-फल बेचने वालों को जब-तब भगाने, पीटने, जुर्माना वसूल करने में पुलिस अथवा नगर निगम के इंस्पेक्टरों को अपार आनंद की अनुभूति होती है।

यह मुद्दा गरीब रिक्शा चालकों के प्रति सहानुभूति या कथित प्रगतिशीलता का नहीं है। वैसे भी किसी कम्युनिस्ट नेता को हमने दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, पटना, इंदौर, जयपुर में रिक्शा या तांगे वालों के लिए लाल झंडा उठाते नहीं देखा। उन्हें दस हजार से अधिक तनख्वाह पाने वाले पब्लिक सेक्टर कंपनियों या बड़े कारखानों के कर्मचारियों की चिंता रहती है। वे वोट बैंक में फिक्स्ड डिपॉजिट की तरह होते हैं। रिक्शे-तांगेवाले मजदूरों का ठौर-ठिकाना ही नहीं होता। जिस पेड़ के नीचे रिक्शा खड़ा किया, वहीं अंगोछा बिछाकर रात कट जाती है। असली सामाजिक संकट मानसिकता का है। भारतीय समाज और व्यवस्था में पैदल चलने वालों, रिक्शों-तांगों-बैलगाड़ियों और बसों पर निर्भर लोगों के लिए चिंता निरंतर कम होती जा रही है। कार, टैक्सी, हवाई जहाज, हेलीकॉप्टर का उपभोग कर सकने वालों के सुख-दुःख पर सर्वाधिक ध्यान है। भारत को अपनी सांस्कृतिक पहचान के पर्यटन उद्योग से 5 अरब रुपयों की आमदनी करने में गौरव अनुभव होता है लेकिन पुराने शहरों के पारंपरिक रंग-ढंग रखने में नाक-भौं सिकोड़ी जाती है। आप म्यूनिख, बर्लिन, कोलोन, ब्रसेल्स, एम्सटर्डम, रोम, लंदन, न्यूयॉर्क, शंघाई, टोक्यो, सिडनी जैसे किसी भी संपन्न और अत्याधुनिक शहर में चले जाएं, वहां कुछ पुराने और चुनिंदा बाजारों में कार, टैक्सी, स्कूटर नहीं घुस सकते। लेकिन भारत के रईसजादे और सत्ताधारी शहर के हर कोने में कार-टैक्सी-ट्रक घुमाने को बेताब रहते हैं। रिक्शे वाले उन्हें अपने विदेशी नस्ल के पालतू कुत्ते से बुरे लगते हैं। इसीलिए उन्हें देखना तक नहीं चाहते। संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) सरकार को दूसरी वर्षगांठ पर एक बड़ी सौगात है- चांदनी चौक में प्रतिबंध के बाद बेरोजगार रिक्शा चालकों के परिवारों का भूखा मरना या मजबूरी में अपराधी बनना और हिंसा में शामिल होना। सरकार को कंधा दे रहे किसी 'प्रगतिशील' ने ऐसे कमजोर बेजुबान लोगों के लिए एक आंसू भी नहीं बहाया। प्रतिपक्ष में बैठी भारतीय जनता पार्टी तो वैसे भी उदार आर्थिक नीतियों के लिए सरकार को 'रचनात्मक सहयोग' देकर अपना कमीशन पा रही है। आखिर मिली-जुली सरकारों का आधुनिक युग है। ●